वंदनीय माता जी का विवाह एवं अनुभूतियाँ

महाशक्ति की लोकयात्रा

वंदनीय माता जी ने एक बार शिष्यों के समक्ष साधना और तपस्या की बात करते हुए कहा था कि

“ये सब जितना गोपनीय रहे, उतना ही अच्छा। संसार को दिखाकर जताकर भला क्या लाभ होगा? गुरुजी को लोकशिक्षण करना था, तुम सब को बताना था, सिखाना था, इसलिए उन्होंने अपने बारे में कुछ छोटी-मोटी बातें बता दीं। उनकी विशेष तपस्या के बारे में अभी भी किसी को कुछ नहीं पता। मेरे बारे में तो खैर कोई कुछ जानता नहीं है जबकि असलियत यह है कि मेरी साधना ग्यारह बारह साल की उम्र में शुरू हो गई थी। इसमें कहीं कोई दिखावा नहीं था। बस सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते हर समय ध्यान किया करती थी । देह का तो जैसे कोई होश नहीं रह गया था, उन दिनों बड़ी ही विचित्र स्थिति थी। अस्तित्व के कण-प्रतिकण में, अणु-परमाणु में जो अव्यक्त नाद है, वह हर समय सुनाई देता रहता था। कभी तो भेरी बजती, कभी मृदंग, कभी वीणा, कभी शंख ध्वनि होती और कभी सब मिल-जुलकर वाद्यवृंद से अलौकिक संगीत उपजाते। देह-मन में सर्वत्र अणु-परमाणुओं के विद्युतकणों का नृत्य और घूर्णन चलता रहता।अंतःकरण में इन अणु-परमाणुओं के सतत वेधन, ध्वंस और नए-नए समुच्चयों से अनंत पदार्थों की

सृष्टि, विकास और समाप्ति के सिलसिले से तदाकार होने लगी। चित् शक्ति की चैतन्यता में सब कुछ स्पष्ट होने लगा। इन्हीं दिनों उन्होंने अपने जन्म और जीवन के कई रहस्यों का साक्षात्कार किया।"

वंदनीय माता जी ने देखीं अतीत की झलकियां:

वंदनीय माता जी ने ध्यान की गहनता में अपने साधनामय अतीत की झलकियां देखीं। गंगा की लहरों एवं मंदिर की घंटियों की गूंज के साथ जो सीन उभरे, पहले वे अस्पष्ट थे लेकिन बाद में धीरे-धीरे स्पष्ट दिखने लगे। उन्होंने अपनेआप को दक्षिणेश्वर मंदिर में रामकृष्ण परमहंस के साथ पाया। उन्हें ऐसा लगा जैसे वह परमहंस देव के साथ, उनके भक्तों व शिष्यों के साथ घिरी हैं। सभी उन्हें मां,मां कहते हुए भक्तिपूर्वक प्रणाम प्रणिपात कर रहे हैं। इस अद्भुत दृश्यावली में वह कितनी देर खोई रहीं, कुछ पता ही न चला। तभी अचानक उनकी ध्यानस्थ चेतना में सीन बदला तो गंगा की लहरों और मंदिर की घंटियों की गूंज सुनाई दी । ऐसा लगा जैसे वह बनारस नगर में कहीं पर हैं। संत कबीर के ताने-बाने के साथ उनके जीवन का ताना बुना हुआ है। वह अक्खड़ - फक्कड़ कबीर के साथ हैं। अनेकों सामान्यजन उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देख

रहे हैं। उनकी झोपड़ी के पास सच्चे योगी, गरीब, अनपढ़ सब एक साथ संत कबीर से ज्ञान पाने के लिए आए हैं। ध्यान की गहनता में उभरते इन दृश्यों को वह निहारती रहीं। इस कालशून्यता में काल-बोध का कोई प्रश्न ही न था लेकिन सीन यहाँ पर भी बदलते रहे। चित् शक्ति का लीला-विलास यहां भी सक्रिय था। ध्यान की इस भावभूमि में उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई दिया कि जो कबीर थे, वही श्रीरामकृष्ण परमहंस थे और वही अब वह महायोगी हैं, जो उन्हें वर्षों से दिखाई दे रहे हैं। इन्हीं के साथ उनके अपने भविष्य की डोर बंधी है। उन्हें विश्वास हो गया कि बीते दो जन्मों का सुपरिचित सान्निध्य उन्हें इस जीवन में भी मिलने वाला है। संत कबीर की लीला सहचरी "लोई" और श्रीरामकृष्ण परमहंस की लीला संगिनी रहीं "माँ शारदा" वही हैं। जिस आत्म-चेतना ने लोई के रूप में जन्म लिया, जिसने माँ शारदा के रूप में जीवन जिया, उसी ने अब भगवती का नाम रूप स्वीकार करके देह धारण की है।

कई वर्षों की तीव्र ध्यान-साधना के बाद उन्हें अपने प्रश्नों के उत्तर मिल गए। उनकी जीवनचर्या का बाहरी रूप फिर से पूर्ववत् सुव्यवस्थित हो गया एवं घर के सभी सदस्यों को विश्वास हो गया कि यह कोई दिव्य आत्मा हैं। साधना तो पहले की भांति ही चलती

रही लेकिन पहले और अब में एक परिवर्तन नज़र आया। अब उनकी "लाली" प्रातः जल्दी स्नान करके शिव-पूजा के साथ "नियमित ध्यान" करने लगी है। अपने आराध्य से मिलने की उनकी तीव्र उत्कंठा को कोई समझ न पाया। लगातार तीव्र होती जा रही उनकी आंतरिक पुकार से परिवार के सभी सदस्य अनजान थे हालांकि इस बीच घटनाचक्र तेज़ी से बदल रहे थे।

परम पूज्य गुरुदेव और वंदनीय माता जी के विवाह की बात करने से पहले अपने पाठकों को स्मरण करा दें कि गुरुदेव विवाह आदि में कोई अधिक रूचि नहीं रखते थे। सरस्वती देवी से प्रथम विवाह के लिए भी ताई जी (गुरुदेव के माता जी) ने बड़ी कठिनता से मनाया था। चेतना की शिखर यात्रा 1 पर आधिरत लेखों में वंदनीय माता जी के साथ विवाह की विस्तृत चर्चा हम कई बार कर चुके हैं। गुरुदेव तो कई बार आनाकानि कर चुके थे लेकिन माँ जो ठहरी, उनसे गुरुदेव का अकेलापन सहन नहीं हो रहा था। ताई जी ने गुरुदेव से यह कह कर सहमति ले ली थी कि मुझे बच्चों की माँ चाहिए।

वंदनीय माता जी का विवाह

उन दिनों की प्रथा के अनुरूप वंदनीय माता जी के पिता जसवंतराव शर्मा को अपनी प्यारी बेटी के विवाह की चिंता होने लगी थी। किशोरी भगवती की अंतर्चेतना में उफनती अलौकिकता के ज्योति सागरों के बीच पुकार के सघन स्वर गूंज रहे थे। आराध्य के चरणों के प्रति उनका अनुराग नित्यप्रति बढ़ता जा रहा था। उनमें आध्यात्मिक प्रेम के बीज अंकुरित होने लगे थे। आराध्य के चरणों में भगवती की प्रीति दृढ़ हो चली थी। उनके हृदय में भक्ति की अंतर्धारा प्रवाहित होती रहती । ध्यान-साधना में अपने विगत जन्मों की कथा स्पष्ट हो जाने के बाद उनमें एक भाव परिवर्तन हो गया था। वह पहले भी शांत रहा करती थीं। अब यह शांति और भी सघन हो गई। इन दिनों वह सर्वथा शांत-अचंचल रहकर अपने दैनिक क्रिया-कलापों में संलग्न रहतीं। बड़ी भाभी के घर-गृहस्थी के कामों में सहयोग, रामायण, महाभारत आदि धर्मग्रंथों का स्वाध्याय, अपनी नियमित ध्यान-साधना, बस यही उनकी दिनचर्या के अनिवार्य तत्त्व थे। घर में सबसे छोटी होते हुए भी वह परिवार के अन्य सभी सदस्यों की देखभाल किया करती थीं। किसको कब, क्या और कितनी जरूरत है, इस बात का उन्हें हमेशा

ध्यान रहता।उनके दोनों बड़े भाई दीनदयाल और सुनहरी लाल उनके गुणों से प्रभावित रहते थे। भाभी को तो उन पर नाज़ था। बड़ी बहन ओमवती की शादी इस बीच हो चुकी थी। अब उनका घर में कभी कभी ही आना-जाना हो पाता था। वह अपनी छोटी बहन को चाहती बहुत थीं, इसलिए वह भाभी से, पिताजी से कभी- कभी ज़िद करती कि लाली को थोड़े दिनों के लिए उनके साथ भेज दें। यहां तो कभी-कभी ही आना-जाना हो पाता है। इस तरह मेरा मन बहल जाएगा और में भी कुछ दिन और अपनी छोटी बहन के साथ रह लूंगी। ओमवती की इस जिद पर जैसे-तैसे पिता जसवंतराव सहमत हो जाते और भगवती थोड़े दिनों के लिए अपनी बड़ी बहन के ससुराल हो आती। वहां भी उनकी दिनचर्या यथावत बनी रहती। बहन को घर के कामों में सहयोग देने के साथ वह अपनी ध्यान-साधना का क्रम बनाए रखतीं।

इन दिनों घर-परिवार के लोग उनके लिए सुयोग्य वर की खोज-बीन बड़े ज़ोर-शोर से कर रहे थे। बड़े भाई दीनदयाल और पिता पं. जसवंतराव के बीच इस संबंध में काफी चर्चाएं हुआ करतीं। इस बार जब वह ओमवती के यहां से लौटीं तो देखा परिवार के एक बुजुर्ग रिश्तेदार किशनप्रसाद जी आए हुए हैं। यह रिश्ते में

जसवंतराव के मामा लगते थे। वह इस समय किसी वर की चर्चा कर रहे थे। जसवंतराव एवं उनके बड़े बेटे दीनदयाल बड़े धीरज और उत्सुकता के साथ उनकी बातें सुन रहे थे। उनकी बातों के कुछ शब्द भगवती के कानों में भी पड़े। वह कह रहे थे,

"जसवंत, मैं तो कहता हूं कि ऐसा लड़का कहीं भी दुनिया भर में खोजे नहीं मिलेगा। वे लोग आंवलखेड़ा के रहने वाले हैं। आस-पास के गांवों में उनकी बड़ी जमींदारी है। खानदानी रईस हैं।"

इन बातों के बीच में जसवंतराव ने टोका और पूछा,"आपने उन्हें मेरे बारे में सब कुछ सही-सही बता दिया कि नहीं?"

प्रश्न के उत्तर में किशन प्रसाद कहने लगे,

"इसमें छिपाने की बात भी क्या है? मेरी लड़के वालों से बात हुई है, मैंने कह दिया कि जसवंतराव के पूर्वज अहमदपुर (खैर, अलीगढ़) के रहने वाले थे। वहीं उनका अपना घर और खेती थी। परदादा के जमाने में 12 जोत की जमींदारी थी। परिवार का बड़ा नाम था लेकिन तुम्हारे पिता श्री परसादी लाल शर्मा के समय में बात बिगड़ गई। किसानों की खराब हालत के कारण परसादी लाल जी ने लगान लिया नहीं और धीरे-धीरे जमींदारी जाती रही। "

किशन प्रसाद की इन बातों को सभी लोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे। वह बता रहे थे,

"मैंने यह भी बता दिया कि तुम लोग चार भाई हो, जसवंत शर्मा, बलवंत शर्मा, रामदयाल शर्मा और वासुदेव प्रसाद। इन चार भाइयों के बीच एक बहन है रामश्री, जो अब अपने घर-परिवार की है।"

किशन प्रसाद की बातों का सिलसिला अपने पूरे वेग में था। अपनी बातों में वे शायद यह भी भूल चुके थे कि सभी लोग लड़के के बारे में जानने के लिए उत्सुक हैं। दीनदयाल के टोकने पर उन्हें ध्यान आया और उनकी बातों की दिशा बदली। वह कहने लगे,

"अरे लड़के के बारे में क्या पूछते हो? पं. रूपकिशोर शर्मा का बेटा है। अब पं. रूपकिशोर के नाम को तो आस-पास के इलाके में सभी जानते हैं। उनके इस सुपुत्र का नाम श्रीराम है। तपस्या, साधना, पढ़ाई-लिखाई सब में अव्वल है। पहले कुछ दिन उसने यहीं आगरा में रहकर सैनिक अखबार में काम किया। आजकल मथुरा में रहकर खुद की पत्रिका निकालते हैं। बस काल देवता ने उनकी पहली पत्नी को उठा लिया। उसके तीन बच्चे हैं- ओमप्रकाश, दयावती और

श्रद्धा, पर अपनी लाली तो इतनी गुणी है कि सब कुछ बड़ी आसानी से संभाल लेगी।"

किशन प्रसाद की इन बातों की घर में कई दिनों तक चर्चा होती रही। चिंतन और चर्चा के अनेकों दौर चले। पहली पत्नी के मरने और उसके तीन बच्चों के होने की बात दीनदयाल को थोड़ा खटकी। इस पर उन्होंने अपने पिता जसवंतराव से काफी देर तक बातें कीं। बातों के बीच में उन्होंने यह भी पूछा, दादा, यह बताओ कि तुम्हारी ज्योतिष क्या कहती है ? उत्तर में जसवंतराव गंभीर होकर कहने लगे,

"देखो, मेरी तो शुरू से मान्यता है कि अपनी लाली "देवी का अंश है।" इसका विवाह किसी आम व्यक्ति से नहीं निभ सकता, वह चाहे कितना ही बड़ा धनवान क्यों न हो? अपनी लाली का सुयोग्य वर वही है, जो तपोनिष्ठ हो, अध्यात्म विद्या का ज्ञाता हो। मुझे तो यह लड़का सब तरह से लाली के लिए ठीक लगता है।”

जसवंत राव की बातें दीनदयाल को भी ठीक लगीं। अंत में पिता-पुत्र दोनों ने मिलकर यह तय किया कि कन्या की भाभी सारी बातें उसे बताकर उसके मन की बात जानने की कोशिश करे। जो कुछ होगा, सो लाली की सहमति से होगा। भाभी ने अपने पति और

श्वसुर की आज्ञानुसार अपनी प्यारी ननद से सारी बातों की चर्चा की। वह सारी बातों को बड़े ही शांत भाव से सुनती रहीं। बातों की समाप्ति पर उन्होंने एक पल के लिए अपनी अंतर्चेतना को एकाग्र किया। इस एकाग्रता में सत्य उद्भासित हो गया। उन्हें इस बात का अहसास हो गया कि इस समय जिनसे उनके विवाह की चर्चा की जा रही है, उन्हीं के कार्य में सहयोग के लिए उन्होंने देह धारण की है। उनके पिछले जन्मों में पति और मार्गदर्शक रहे उनके आराध्य ही इस बार उनके पति होने जा रहे हैं। अंतर्मन की इन सारी बातों को उन्होंने गोपनीय ही रखा। प्रत्यक्ष में उन्होंने बस केवल इतना कहा,

“भाभी, दादा से कह देना कि मुझे उनकी सारी बातें स्वीकार हैं। वे जो कुछ करने जा रहे हैं, उसी में मेरे जीवन का कल्याण है।”

लाली की सहमति व स्वीकृति पाकर सारे परिवार में उत्साह का ज्वर उफन उठा। उल्लास की तरंगें घर के कोने-कोने में बिखरने लगीं। वर पक्ष के लोगों की सहमति भी आ गई। मंगल परिणय की तैयारियां होने लगीं।18 फरवरी 1945 का दिन विवाह के लिए निश्चित हुआ। विवाह का दिन तय होने के बाद से पं. जसवंत राव जी के मन में खुशियों के साथ एक कसक भी घुल गई। उन्हें ऐसा

लगने लगा जैसे कि जगदंबा पार्वती ने पीहर छोड़कर भगवान भोले नाथ के साथ जा बसने का संकल्प ले लिया हो। अपनी इस कसक को दिल में लिए जसवंत राव बेटी के विवाह की तैयारी में जुटे रहे। अरेला गांव के ज्वाला प्रसाद इसमें उनके मुख्य सहयोगी बने। उन्हीं के माध्यम से सारी बातें बनीं। निश्चित तिथि पर विवाह संपन्न हुआ। विवाह में बहुत सादगी थी। दिखावे -प्रदर्शन का तो जैसे कोई नामोनिशान भी न था । यह मनुष्यता के सामने जीवन आदर्श को प्रस्तुत करने वाले ऋषियुग्म का मंगल परिणय था । यह तप और श्रद्धा का मिलन था। ज्ञान और भक्ति का अनोखा मेल था । भगवती और श्रीराम इस शुभ घड़ी में अपने आदर्श पथ पर एक साथ चलने के लिए संकल्पित हुए थे। अपने आराध्य के चरणों के सामीप्य में भगवती के जीवन का एक सर्वथा नया आयाम उद्घाटित हुआ था। मां का मातृत्व अभिव्यक्त हो रहा था। मातृत्व की सजल भावनाएं अपना स्वरूप व आकार पाने की तैयारी में थीं। मां का मातृत्व आंवलखेड़ा में पांव रखते ही छलक उठा। बारात विदा होकर यहीं आई थी। पूर्वजों की देहरी, अपने आराध्य की जन्मस्थली व उनकी प्रारंभिक तपस्थली में वह दुल्हन के रूप में डोली से उतरी थीं। लाल रंग की ज़री के काम वाली साड़ी पहने

सौभाग्य श्रृंगार से सजी वह साक्षात् जगदंबा लग रही थीं। हिमवान की पुत्री पार्वती का पीहर से विदा होकर भगवान भोलेनाथ के साथ अपने ससुराल आने का दृश्य उन पलों में साकार हो गया। बाल मंडली शिवगणों की तरह उन्हें बड़ी श्रद्धा एवं आश्चर्य से देखे जा रही थी। ताई जी (उनकी सास व पूज्य गुरुदेव की माताजी) शुभ शगुनों वाले सारे लोकाचार पूरा करने में लगी थीं। यह क्रम काफी देर तक चलता रहा। एक-एक करके सभी रीति-रिवाज और विधि-विधान पूरे किए गए। इसके बाद उन्हे एक जगह चटाई पर बैठाया गया। बच्चे अभी तक उन्हें घेरे हुए थे। अचरज और कौतुक इन बच्चों के मनों को जब-तब कुरेद देता था। इसी के वशीभूत होकर वह थोड़ा-बहुत आपस में धीमे से बतिया लेते थे। तभी दया आगे बढ़ी और पास जाकर खड़ी हो गई। लाली यानि वंदनीय माता जी ने उसका हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया और बड़े प्यार से बोलीं, “मैं तुम्हारी मां हूं, मुझसे संकोच की कोई जरूरत नहीं है।" इस कथन से दया को बड़ी आश्वस्ति मिली। उसने बड़े ही धीमे और लरजते स्वर में कहा, "मां।" इस एक अक्षर ने माता और पुत्री दोनों की अंतर्भावनाओं को एकरस कर दिया। अपरिमित मिठास उनके जीवन और घर-आंगन में बिखर गई। मां

के होने का अहसास मन को कितनी आश्वस्ति, सहारा, संबल, विश्वास और निश्चिंतता देता है, यह दया के मुख मंडल पर अचानक उभर आई। वह इतनी देर में कई बार अपने मन में मां-मां का एकाक्षरी महामंत्र गुनगुना चुकी थी। मां के प्यार की तरलता ने उसके अंतस्तल को भावसिक्त कर दिया था। वह उन्हीं के पास सिमट- सिकुड़कर बैठ गई। दया की इस भावमुद्रा ने ओमप्रकाश को अचरज में डाल दिया। वह सोचने लगे कि उनकी छोटी बहन अचानक इतनी खुश क्यों दिखाई देने लगी। आखिर कुछ ही पलों में उस पर क्या जादू हो गया। अपने सोच-विचार में डूबे हुए वह भी हिम्मत करके आगे बढ़े। इस समय उन्होंने निक्कर-कमीज पहन रखी थी। कुछ कदमों का फासला तय करके वह पास जाकर खड़े हो गए। इतने में उधर से ताई जी गुजरी। उन्होंने अपने स्वभाव के अनुरूप थोड़ा तेज आवाज में कहा, “खड़ा-खड़ा देख क्या रहा है? चल झुककर अपनी मां के पैर छू।" ताई जी की आवाज से थोड़ा सहमते हुए ओमप्रकाश ने पांव छू लिए। चरण स्पर्श करते ही उन्होंने पूछा, “किस कक्षा में पढ़ते हो?" ओमप्रकाश ने बड़े हल्के स्वर में इस प्रश्न का उत्तर दिया, “मेरा नाम ओमप्रकाश है और मैं कक्षा सात में पढ़ता हूं।”

इसके बाद के दृश्यों का वर्णन हम अपने 9 नवंबर 2022 वाले लेख में कर चुके हैं, यहाँ पर फिर से दोहराने का कोई औचित्य नहीं लगता लेकिन फिर भी हम उस लेख का लिंक यहाँ दे रहे हैं

Click here